RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 48, अंक : 8 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 6 जून, 2021
विक्रमी सम्वत् 2078, सृष्टि सम्वत् 1960853122
दयानन्दाब्द : 197 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–48, अंक : 8, 3-6 जून 2021 तदनुसार 24 ज्येष्ठ, सम्वत् 2078 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

भोग-सामग्री के साथ जीव का शरीर में प्रवेश

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः।।

–ऋ० ९।७२।१

शब्दार्थ-अरुषः न = इन्द्रियों की भाँति हरिम् = हरणशील जीव को मृजन्तिः = शुद्ध करते हैं, वह कलशे = शरीर रूप कलश में धेनुभिः = धेनु=इन्द्रियों के साथ युज्यते = युक्त होता है, जोड़ा जाता है और सोमः = ऐश्वर्य, भोग सामग्री अज्यते = प्राप्त कराई जाती है। तब वह वाचम् = वाणी का उद्+ईरयति = उच्चारण करता है कति+चित् = कुछ पुरुष्टुतस्य = अनेकों से स्तूयमान भगवान् का परिप्रियः = प्यारा होकर मती = मति से, बुद्धि से, हिन्वते = चेष्टा करता है।

व्याख्या-आत्मा को शुद्ध करो, जीव को पवित्र करो, सब ओर से यह ध्वनि आती है, किन्तु कोई नहीं बताता, कैसे पवित्र करें? वेद सङ्केत करता है-'हरिं मृजन्त्यरुषो न' जैसे इन्द्रियों को शुद्ध किया जाता है, वैसे ही आत्मा को भी शुद्ध करते हैं। इन्द्रियों की शुद्धि संयम से हो सकती है, जैसा कि मनुजी ने कहा है–

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्।।

–मनु० २।८८

जैसे विद्वान्=समझदार स्वकार्य कुशल सारथि घोड़ों को नियम में रखता है, वैसे मन और आत्मा को कुमार्ग पर ले-जाने वाली विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के संयम=निग्रह में सब प्रकार से प्रयत्न करे, क्योंकि–

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति।।

–मनु० २।९९

जीवात्मा इन्द्रियों के वश में पड़कर निःसन्देह बड़े-बड़े दोषों को प्राप्त होता है और उन इन्द्रियों को संयत करने से सिद्धि को प्राप्त करता है। संयम का जब तक ज्ञान न हो, अनुष्ठान नहीं हो सकता, तात्पर्य यह कि आत्मा की शुद्धि के लिए ज्ञान तथा संयम, विद्या तथा तप दोनों की आवश्यकता है, जैसा कि मनुजी ने कहा है–

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

–मनु० ५।१०९

जल से शरीर के अवयव शुद्ध होते हैं, मन सत्य से शुद्ध होता है, विद्या और तप से आत्मा की शुद्धि होती है और बुद्धि ज्ञान से-तृण से लेकर ब्रह्मपर्यन्त के विवेक से शुद्ध होती है।

इन्द्रियों के प्रसङ्ग से चूँकि आत्मा विषयों में खींचा जा रहा है, अतः वेद ने उसे 'हरि' नाम दिया।

भोग की अभिलाषा से, अथवा भोग की प्राप्ति की भावना से मनुष्य इन्द्रियों के वश में होकर मलिन होता है। वेद कहता है-अरे जीव! इस कार्य के लिए तू अपने को मलिन न कर, क्योंकि जहाँ तू इन्द्रियों=भोग के साधनों से युक्त करके शरीर में भेजा गया है, वहाँ सोम=भोगसामग्री भी साथ ही भेजी गई है। तात्पर्य यह है कि जितना तेरे पूर्वकर्मों से अर्जित भोग है, वह तुझे अवश्य मिलेगा। उसमें न्यूनता या अधिकता नहीं हो सकती, फिर क्यों तू विषयवासना के फेर में पड़कर अपना सत्यानाश करने लगा है? (शेष पृष्ठ 7 पर)

विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं के पदाधिकारियों से निवेदन

मान्य महोदय,

सादर नमस्ते।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों से निवेदन है कि 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर अपनी-अपनी आर्य समाजों, शिक्षण संस्थाओं, सार्वजनिक पार्कों तथा अपने घरों के आसपास ऑक्सीजन युक्त पौधे लगाएं तथा अपने अपने घरों में यज्ञ करें। इस दिन सभी प्रकृति के संरक्षण का संकल्प लेकर पर्यावरण दिवस मनाएं। प्रकृति शुद्ध होगी तभी हमें शुद्ध वायु ऑक्सीजन के रूप में मिलेगी। इसलिए हम सभी का कर्त्तव्य है कि पर्यावरण दिवस के अवसर पर अपने आसपास के लोगों को भी यज्ञ के प्रति जागरूक करें और कम से कम एक पौधा अवश्य लगाने के लिए प्रेरित करें। आशा है आप सभी विश्व पर्यावरण दिवस को प्रकृति संरक्षण संकल्प दिवस के रूप में मनाएंगे।

धन्यवाद सहित।

भवदीय,
प्रेम कुमार
सभा महामन्त्री

जाति-आयु-भोग

ले.-अर्जुन देव स्नातक 5, सीताराम भवन, फाटक, आगरा कैंट (उ.प्र.)

लेख के इस शीर्षक का अभिप्राय क्या है? अभिप्राय तो स्पष्ट है:-

जाति-मनुष्य, पशु, पक्षी आदि

आयु-जीवनकाल-प्रत्येक का अलग-अलग

भोग-खाद्यादि साधन समूह

इनमें जाति अपरिवर्तनीय है अर्थात् ईश्वरीय नियम से प्राप्त है, अत: इसमें परिवर्तन सम्भव नहीं है। शेष दो आयु-भोग परिवर्तनशील हैं। इनमें परिवर्तन इसलिए है-जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। अत: अपनी स्वतन्त्रता के सदुपयोग-दुरुपयोग से इसमें परिवर्तन सम्भव है।

आपने जाति परिवर्तन को ईश्वरीय नियम के कारण अपरिवर्तनीय बताया तो क्या आयु-भोग ईश्वरीय नियम से प्राप्त नहीं है? प्राप्त तो उसी के नियम से हैं।

फिर एक प्रश्न है-उसके किस नियम से ये तीनों-जाति, आयु, भोग प्राप्त हैं?

योग दर्शन में प्राप्त सूत्र है।

'सति मूले तद्विपाको जाति आयु भोग:'

योग दर्शन साधन पाद-13

इस सूत्र का अर्थ स्पष्ट है कि सति मूले-मूल के होने पर-मूल से तात्पर्य जन्मजन्मान्तर के कर्माशय के अनुसार तद्विपाको=उसका फल-जाति-आयु-भोग की प्राप्ति है।

सूत्रार्थ से स्पष्ट है कि जाति-आयु-भोग-विपाक = फल है-मूले सति = मूल = कर्माशय के अनुसार फल है। यहाँ जाति और आयु तो स्पष्ट है-भोग का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

दर्शन योग महाविद्यालय आर्य वन, रोजड़ में अध्ययन किये हुए एक विद्वान् के अनुसार-भोग-उस शरीर के अनुसार योग्य पदार्थ-अर्थात् घास, अन्न, फल, आदि।

उक्त अर्थ में योनि अनुसार खाद्य पदार्थ प्राप्ति तो सत्य है, फिर भी भोग का अर्थ यह उचित नहीं है। क्यों उचित नहीं है?

उचित इसलिए नहीं है कि फल का अर्थ 'प्रवृत्तिदोष-जनितोऽर्थ: फलम् (न्याय दर्शन) व्यास भाष्यानुसार 'सुख दु:ख संवेदन फलम् = अर्थात्-सुख दु:ख की प्राप्ति फल है। आगे-न्याय दर्शनकार स्पष्ट करते हैं-

न पुत्र पशु स्त्रीपरिच्छद हिरण्यान्नादिफल निर्देशात् (4.1.5)

पुत्र, पशु, स्त्री, परिछद हिरण्य = सोना और अन्नादि को फल कहा जाता है। इसके उत्तर में कहते हैं:-

'तत्सम्बन्धात्फलनिष्पत्ते स्तेषु फलवदुपचार: (4.1.55) अर्थात् पुत्रादि के सम्बन्ध से सुखादि की प्राप्ति होने से फल का व्यवहार औपचारिक है। (गौण है)

भोग का अर्थ सुख-दु:ख है-इसमें अन्य कोई प्रमाण है? जी हाँ, है। स्वामी हरिहरानन्द भास्वतीवृत्ति में-

'भोग: सुखं दु:खं मोहश्च'

श्री विज्ञानभिक्षु 'योगवार्तिकम्' में

'भोग: सुखदु:खात्मक-शब्दादि वृत्तिरित्यर्थ:।

श्री राघवानन्द सरस्वती 'पातञ्जलरहस्यम्' में-

''भोग: सुख दु:ख साक्षात्कार: इति सूत्रार्थ'

(उक्त प्रमाण साङ्ग्योग दर्शनम् अर्थात् पातञ्जल दर्शनम् = चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, बनारस सिटी-1937 से उद्धृत है।)

वैसे भोग के लिए जो साधन प्राप्त हुए हैं, वे पूर्व जन्म के कर्माशयानुसार सुख दु:ख रूपी फल देने वाले होते हैं, अर्थात् कर्माशय उत्तम है तो प्राप्त साधन सुखदायी तथा कर्माशय उत्तम नहीं है तो प्राप्त साधन दु:खदायी होंगे।

कर्मफल प्राप्ति में साधन निश्चित नहीं होते हैं-फल प्राप्ति निश्चित होती है।

निश्चय से आपने उलझन में डाल दिया है। कर्माशय सुख दु:ख देने वाले स्वामी दयानन्द का कोई प्रमाण हो तो-बताइये।

आर्योद्देश्य रत्नमाला के 51वें में प्रारब्ध किसे कहते हैं-इसे इन शब्दों में लिखा है-

'जो पूर्व किये हुए कर्मों का (संचित-कर्माशय का) सुख दु:ख रूप फल भोग किया जाता है, उसको प्रारब्ध (भाग्य) कहते हैं।

इस वचन से सिद्ध होता है कि सुख-दु:ख की प्राप्ति पूर्व किये कर्मों के अनुसार फल के रूप में वर्णित है-जिसे योग दर्शन के सूत्र ने 'सतिमूले तद्विपाको' अर्थात् कर्माशय के होने पर उसका फल जाति-आयु-भोग है।

आपकी बात समझ में आ रही है, किन्तु एक प्रश्न है-उक्त तीनों में जाति तो अपरिवर्तनीय है, किन्तु आयु और भोग घटाये बढ़ाये जा सकते है। क्यों घटाये बढ़ाये जा सकते हैं? जब कि ये भी-सतिमूले विगत कर्माशय के अनुसार प्राप्त हैं। सिद्धान्त तो यह है कि कारण के अनुसार कार्य होता है-तो यहाँ कारण पूर्व जन्म जन्मान्तर के कर्माशय हैं-जब कर्माशयानुसार विपाक-फल प्राप्ति है तो तीनों ही अपरिवर्तनीय हैं)

आपकी बात सत्य है, किन्तु शास्त्रों में आयु बढ़ाने का वर्णन प्राप्त होता है-उसका क्या होगा? क्या वह सब असत्य है? यथा-पश्येम शरद: शतम्।

आयु का घटना बढ़ना महर्षि दयानन्द के निम्न वचनों से भी सिद्ध होता है। सत्यार्थ प्रकाश-तृतीय, चतुर्थ समुल्लास में वर्णित है-

1. अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता, दोनों की आयु घट जाती।

2. चौबीस वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूंगा तो प्रसिद्ध है कि रोग रहित रहूंगा और आयु 100 या 80 वर्ष तक रहेगी।

3. उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् 400 वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावे, वैसे तुम भी बढ़ाओ।

आपने आयु बढ़ने के अनेक प्रमाण दे दिये, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि इनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं या प्राप्त होते हैं। शास्त्रों के इन वचनों को समझने से पूर्व आयु किसे कहते हैं, यह जान लेना आवश्यक है। उणादि कोष में महर्षि लिखते हैं-प्रथम पाद सूत्र की व्याख्या में-'छन्दसीण:' = वेद इण्-धातोरुण्।

'एति प्राप्नोति सर्वानिति आयु: जीवनकाल:।'

इसी कोष के द्वितीय पाद के 120वें सूत्र 'एतेर्णिच्च' की व्याख्या में लिखते हैं-'ईयते प्राप्यते यत्तत् आयु: जीवनंवा।'

स्वामी दयानन्द के अर्थानुसार-इति प्राप्नोति = प्राप्त होती है तथा ईयते = प्राप्यते = प्राप्त की जाती है, इन दोनों के पूर्व जन्मजन्मान्तर के कर्माशय अनुसार प्राप्त या प्राप्त की गई आयु-अर्थात्-जीवनकाल जो निश्चित है।

एक और विचार यह भी है, सूत्रकार ने कर्माशयानुसार प्राप्त जाति-आयु-भोग को केवल मनुष्य की दृष्टि से नहीं कहा है। यह तो मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी चेतन प्राणियों के विषय में कहा है-अत: सभी निश्चित है-घट-बढ़ नहीं सकते हैं।

सत्य तो यह भी है कि किसी को भी पता नहीं है कि कर्माशयानुसार किसको कितनी आयु प्राप्त हुई है। कोई भी मनुष्य प्रयत्न करके भी ईश्वरीय इस व्यवस्था को नहीं जान सकता है-फिर आयु, भोग आदि घटे या बढ़े-इसे किस नियम से जान सकते हैं?

योग दर्शन के 2-14 के सूत्रानुसार भी यह स्पष्ट है-पुण्यापुण्य कर्माशयानुसार जाति, आयु, भोग सुखदायक या दु:खदायक के रूप में प्राप्त है। सूत्र है-

'ते ल्हादपरितापफला: पुण्या-पुण्यहेतुत्वात्।'

जब पूर्व कर्माशयानुसार यह सब प्राप्त है तो इस जन्म में परिवर्तन सम्भव नहीं है, हाँ इस जन्म में ईश्वर भक्ति के साथ पुण्य कर्म करेंगे तो अगले जन्म में जाति आयु भोग उत्तम प्राप्त होंगे। साथ ही इस जन्म में प्राप्त दु:खादि को, अपार या भयंकर कष्ट को सहन करने की शक्ति प्राप्त होगी-प्राप्त जीवनकाल अनायास बीत जायेगा।

इस प्रकार शास्त्र वचन या स्वामी दयानन्द के वचन मिथ्या नहीं है-अपितु प्राप्त जीवन में ब्रह्मचर्यादि उत्तम आचरण का पालन करने से भविष्य में आयु बढ़ेगी-इसका निर्देश है।

एतद् विषयक स्वामी दयानन्द का कोई प्रमाण प्रस्तुत करें-मनुस्मृति के अध्याय 8 के 81वें श्लोक का अनुवाद सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में-

''जो साक्षी सत्य बोलता है, वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त हो के सुख भोगता है।''

अन्य भी पुनर्जन्म प्रकरण में वर्णित है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर........

प्रकृति के संरक्षण का संकल्प लें

5 जून को विश्व के लगभग 100 देशों में विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। इसकी घोषणा और स्थापना संयुक्त राष्ट्र महासभा के द्वारा 1972 में हुई थी। पर्यावरण शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, परि और आवरण जिसमें परि का अर्थ है हमारे आसपास या चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है जो हमें चारों ओर से घेरे हुए अथवा ढके हुए है। पर्यावरण जलवायु, स्वच्छता, प्रदूषण तथा वृक्ष सभी को मिलाकर बनता है और ये सभी चीजें अथवा पर्यावरण हमारे दैनिक जीवन के साथ सम्बन्ध रखता है।

मानव और पर्यावरण एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। पर्यावरण जैसे जलवायु या वृक्षों का कम होना मानव शरीर और स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव डालता है। पर्यावरण के जैविक संघटकों में सूक्ष्म जीवाणु से लेकर कीड़े-मकौड़े, सभी जीव जन्तु और पेड़ पौधों के अलावा उनसे जुड़ी सारी जैव क्रियाएं और प्रक्रियाएं भी शामिल हैं। जबकि पर्यावरण के अजैविक संघटकों में निर्जीव तत्व और उनसे जुड़ी प्रक्रियाएं आती हैं जैसे: मिट्टी, चट्टानें, नदी, हवा और जलवायु के तत्व इत्यादि। पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों में हवा, पानी, मिट्टी, खनिज, ईंधन पौधे आदि शामिल हैं। इन सभी संसाधनों का सीमित उपयोग करना ही प्रकृति का संरक्षण है ताकि भविष्य में भी इन चीजों से लाभान्वित हो सकें। प्रकृति, संसाधन और पर्यावरण हमारे जीवन और अस्तित्व के आधार हैं। आधुनिक सभ्यता की उन्नति ने हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर बहुत प्रभाव डाला है। इन प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण बहुत जरूरी है। संरक्षणवादियों का मानना है कि बेहतर भविष्य के लिए विकास आवश्यक है लेकिन जब परिवर्तन प्रकृति को हानि पहुँचाते हो तो वे विकास नहीं अपितु आने वाली पीढ़ियों के लिए विनाश का कारण बन जाते हैं। भोजन, पानी, वायु और आश्रय जैसी सभी चीजें हमें जीवित रहने के लिए जरूरी हैं। ये सभी प्राकृतिक संसाधनों के अन्तर्गत आते हैं। इनमें से कुछ संसाधन छोटे पौधों की तरह होते हैं जिन्हें इस्तेमाल किए जाने के बाद जल्दी से बदला जा सकता है। दूसरे बड़े पेडों की तरह जिन्हें बदलने में समय लगता है। यदि संसाधन लापरवाही से प्रबंधित होते हैं तो निश्चित रूप से संसाधनों का दुरूपयोग होता है और इसके जो अक्षय संसाधन हैं वे भी खतरे की श्रेणी में आ जाते हैं और इन अक्षय संसाधनों को अधिक समय तक उपयोग के लिए नहीं बचाया जा सकता। लेकिन अगर हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों से प्यार है तो हमें इन संसाधनों को बुद्धिमत्ता से प्रबंधित करना होगा।

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का एक तरीका है रीसाइक्लिंग की प्रक्रिया। इसके माध्यम से प्रकृति और संसाधनों का संरक्षण हो सकता है। कई उत्पाद जैसे पेपर, कप, कार्डबोर्ड और लिफाफे पेडों से बनते हैं। इन उत्पादों का रीसाईक्लिंग करके एक वर्ष में कई लाख पेड़ों को बचा सकते हैं। यह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए एक बढ़िया उपाय है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि 2.6 बिलियन लोगों के लिए पर्याप्त मात्रा में पीने के लिए स्वच्छ पानी नहीं है। पीने, खाना पकाने या धोने के लिए प्रदूषित पानी का उपयोग करने के कारण हर साल पाँच लाख से अधिक लोग मरते हैं। पृथिवी की आबादी का एक तिहाई हिस्सा उन क्षेत्रों में रहता है, जो पानी के तनाव का सामना कर रहे हैं।

आज जब भौतिक विकास के पीछे दौड़ रही दुनिया ने जरा ठहर कर साँस ली तो उसे अहसास हुआ कि चमक धमक के फेर में क्या कीमत चुकाई जा रही है। आज कोई भी देश ऐसा नहीं है तो पर्यावरण की समस्या से न जूझ रहा हो। भारत भी पर्यावरण की समस्या से चिंतित है परन्तु भारत के पास आज भी बहुत कुछ बाकि है। पश्चिम के देशों ने पर्यावरण को अत्यधिक नुक्सान पहुंचाया है। पेड़ काटकर जंगल में कंक्रीट खड़े करते समय उन्हें अनुमान नहीं था कि इसके क्या गंभीर परिणाम भुगतने होंगे। हमारे देश की तरह पश्चिम के देशों में प्रकृति को नुक्सान पहुँचाने से रोकने के लिए मजबूत परम्पराएं भी नहीं थी जबकि हमारी भारतीय संस्कृति में प्रकृति संरक्षण के सूत्र मौजूद हैं। भारतीय संस्कृति में प्रकृति संरक्षण को अनेक रूपों में मानवीय जीवन के साथ जोड़ा गया है। पेड़ की तुलना संतान से की गई है तो नदी को माता का दर्जा दिया गया है। प्राचीन समय में भारत के वैज्ञानिक ऋषि मुनियों को प्रकृति संरक्षण और मानव के स्वभाव की गहरी समझ थी। वे जानते थे कि मानव अपने क्षणिक लाभ के लिए कई मौकों पर गंभीर भूल कर सकता है, अपना ही भारी नुक्सान कर सकता है। इसलिए उन्होंने प्रकृति के साथ मानवीय संबंध निर्मित कर दिए ताकि मनुष्य प्रकृति को गंभीर हानि न पहुंचा सके।

प्राचीन काल से ही भारत में प्रकृति के साथ संतुलन बनाकर चलने का संस्कार है। हमारे वेदों और शास्त्रों में प्रकृति संरक्षण के अनेक उपायों का वर्णन किया गया है। वेदों में वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि और द्युलोक के संरक्षण की बात अनेक मन्त्रों में कही गई है। साथ ही वृक्ष वनस्पतियों के संरक्षण का आदेश दिया गया है। वेदों में वायु को अमृत कहा गया है। वायु जीवनशक्ति देता है। इसको भेषज या औषधि कहा गया है। यह प्राणशक्ति देता है और अपानशक्ति के द्वारा सभी दोषों को बाहर निकालता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि हम ऐसा कोई काम न करें, जिससे वायुरूपी अमृत की कमी हो। यदि हम प्राणवायु को कम करते हैं तो अपने लिए मृत्यु का संकट तैयार करते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि वायु हमारे हृदय के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारक आरोग्य कर औषधि को प्राप्त कराता है और हमारी आयु को बढ़ाता है। यह वायु हमारा पितृवत् पालक, बन्धुवत् धारक, पोषक और मित्रवत् सुखकर्ता है और हमें जीवन वाला करता है।

वेदों में जल की उपयोगिता और उसके महत्व पर बहुत बल दिया है। जल जीवन है, अमृत है, भेषज है, रोगनाशक है और आयुवर्धक है। जल को दूषित करना पाप माना गया है। जल के विषय में कहा गया है कि जल से सभी रोग नष्ट होते हैं। जल सर्वोत्तम वैद्य है। जल हृदय के रोगों को भी दूर करता है। जल को ईश्वरीय वरदान माना गया है। अनेक मन्त्रों में जल को दूषित न करने का आदेश दिया गया है। जल और वृक्ष वनस्पतियों को कभी हानि न पहुँचावें। पुराणों में तो यहाँ तक कहा गया है कि नदी के किनारे या नदी में जो थूकता है, मूत्र करता है या शौच आदि करता है, वह नरक में जाता है और उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है।

वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में वृक्ष वनस्पतियों का बहुत ही महत्त्व वर्णन किया गया है। वृक्ष वनस्पति मनुष्य को जीवनी शक्ति देते हैं और उसका रक्षण करते हैं। औषधियाँ प्रदूषण को नष्ट करने का प्रमुख साधन हैं। इसलिए उन्हें विषदूषणी कहा गया है। वेद में वृक्षों को पशुपति या शिव कहा गया है। ये संसार के विष कार्बनडाईआक्साईड को पीते हैं और इस प्रकार ये शिव के तुल्य विषपान करती हैं और प्राणवायु या ऑक्सीजन रूपी अमृत देती हैं। अत: वृक्षों को शिव का मूर्तरूप समझना चाहिए। इसी आधार पर ऋग्वेद में वृक्षों को लगाने का आदेश है। ये जल के स्रोतों की रक्षा करते हैं।

5 जून विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर हम सभी प्रकृति के संरक्षण का संकल्प लें। अपने आसपास की खाली भूमि पर पेड़ पौधे लगाएं। इससे आप गर्मी, भूक्षरण, धूल इत्यादि से तो बचाव कर ही सकते हैं, पक्षियों को बसेरा भी दे सकते हैं। फूल वाले पौधों से आप कीट पतंगों को आश्रय और भोजन भी दे सकते हैं। जल को व्यर्थ न गंवाने का संकल्प लें। वृक्ष वनस्पतियों की रक्षा करें। पर्यावरण दिवस पर बड़ी-बड़ी बातें करने से पहले हमें कुछ आदतें अपनानी होंगी व उनका पालन करना होगा।

प्रेम कुमार

संपादक एवं सभा महामन्त्री

लुधियाना आर्यसमाज (इतिहास के पन्नों से) भाग 2

लुधियाना आर्यसमाज में बहुत-से ऐसे सुयोग्य व्यक्ति थे, जो समय-समय पर लुधियाना शहर में तथा समीपवर्ती नगरों और ग्रामों में जाकर धर्म-प्रचार किया करते थे। प्रारम्भ के वर्षों में जिन स्थानीय व्यक्तियों ने जीवन-निर्वाह के अपने कार्य करते हुए धर्म-प्रचार के लिए भी समय निकाला, उनमें पण्डित जातीराम, लाला देवीचन्द और पण्डित बिहारीलाल मुख्य थे। समाज की ओर से पण्डित गोपालदत्त उपदेशक तथा पण्डित मथुरादास भजनीक को नगर तथा जिले में प्रचार के लिए नियुक्त किया गया था। बाद में जो स्थानीय व्यक्ति धर्म-प्रचार के प्रयोजन से अपना अमूल्य समय देते रहे, उनमें मास्टर रामलाल, पण्डित गूजरमल, पण्डित हरदयालु शास्त्री, मास्टर यशपाल, पण्डित अर्जुनदेव शास्त्री, पण्डित विष्णुमित्र और पण्डित सत्यदेव के नाम उल्लेखनीय हैं। लुधियाना आर्य समाज जो उन्नति कर सका, और महर्षि दयानन्द सरस्वती के मिशन को पूरा करने के सम्बन्ध में उसका जो महत्वपूर्ण योगदान रहा, उसमें इन स्थानीय आर्य सज्जनों का कर्तृत्व अत्यन्त सराहनीय था। महर्षि के देहावसान के पश्चात् की आधी शताब्दी में जिन संन्यासियों, विद्वानों, प्रचारकों और कर्मठ कार्यकर्ताओं ने वैदिक धर्म के प्रचार में विशेष तत्परता प्रदर्शित की थी प्रायः वे सब समय-समय पर लुधियाना पधारते रहे, और उनके व्याख्यानों व उपदेशों से वहाँ के समाज ने बहुत लाभ उठाया। इन महानुभावों में पण्डित लेखराम, स्वामी ईश्वरानन्द, स्वामी आत्मानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी योगेन्द्रपाल, स्वामी नित्यानन्द, स्वामी विश्वेश्वरानन्द, मास्टर आत्माराम, पण्डित गणपति शर्मा, पण्डित पूर्णानन्द, पण्डित शिवशंकर काव्यतीर्थ, स्वामी ब्रह्मानन्द, महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), महात्मा नारायण स्वामी, आचार्य रामदेव, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी सर्वदानन्द, स्वामी सत्यानन्द, महाशय कृष्ण, स्वामी अच्युतानन्द और श्री वजीरचन्द विद्यार्थी प्रमुख थे। वस्तुतः उस युग में आर्यसमाज के जो भी प्रमुख विद्वान्, संन्यासी व प्रचारक थे, सभी समय-समय पर, विशेषतया वार्षिकोत्सवों के अवसर पर लुधियाना आते रहे।

'पुराने रिकार्ड से पता चलता है, कि लुधियाना आर्यसमाज के इतिहास के प्रारम्भ काल में समाज का नेतृत्व किन महानुभावों के हाथ में था। और वे किस प्रकार सर्वत्र वैदिक धर्म के प्रचार के लिए सदा तत्पर रहा करते थे। उस समय के धर्म-प्रचार में शास्त्रार्थों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। ये शास्त्रार्थ प्रधानतया पौराणिक पण्डितों में हुआ करते थे। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, श्राद्ध और विधर्मियों की शुद्धि आदि ऐसे विषय थे। जिन पर आर्य समाज का सनातनियों से विरोध था। आर्यसमाज की ओर से जिन विद्वानों ने इन विषयों पर पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ किये, उनमें पण्डित आर्यमुनि, पण्डित गणपति शर्मा, महात्मा मुंशीराम और स्वामी दर्शनानन्द प्रमुख थे। पौराणिक विद्वान् पण्डित जगतप्रसाद और आर्यसमाज के पण्डित गणपति शर्मा में श्राद्ध विषय पर हुआ एक शास्त्रार्थ बहुत प्रसिद्ध है। सरदार मानसिंह बार-एट-ला ने इसकी अध्यक्षता की थी, और जनता पर इसका इतना अधिक प्रभाव पड़ा था, कि लुधियाना के ईसाई पत्र 'नूर अफशा' ने शर्माजी के तर्क व युक्तियों की प्रशंसा करते हुए आर्यसमाज की विजय को स्वीकार किया था। शास्त्रार्थों का आयोजन केवल लुधियाना शहर में ही नहीं होता था, अपितु ज़िले के रायकोट, जगराओं, माछीवाड़ा, फिल्लौर आदि समीपवर्ती नगरों में भी लुधियाना समाज की ओर से शास्त्रार्थों की व्यवस्था की जाती थी, जिससे आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में बहुत सहायता मिलती थी। उस समय लुधियाना समाज के वार्षिकोत्सव का भी विशेष महत्त्व था। प्रारम्भ काल में ऐसे समाज अधिक नहीं थे, जिनके वार्षिकोत्सव प्रति वर्ष नियमपूर्वक होते हों। पर जिनके उत्सव प्रतिवर्ष होते थे, उनमें न केवल अपने शहर व पास-पड़ोस की बस्तियों व नगरों के नर-नारी ही अच्छी बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे, अपितु दूर-दूर से भी श्रद्धालु लोग आर्य विद्वानों के व्याख्यान सुनने के लिए आया करते थे। इन अवसरों पर सहभोज का भी प्रबन्ध किया जाता था। इससे आर्यजनों में परस्पर प्रीति की वृद्धि में सहायता मिलती थी। पंचमी आदि त्यौहारों पर भी समाज द्वारा सहभोजों का आयोजन किया जाता था। सामाजिक ऊँच-नीच, जात-पात व छूत-अछूत का कोई भी भेद किये बिना सब आर्य इन सहभोजों में प्रेमपूर्वक सम्मिलित हुआ करते थे।

शुद्धि के कार्य पर भी आर्यसमाज लुधियाना ने समुचित ध्यान दिया था। उस द्वारा पहली शुद्धि रामलाल की की गयी, जो मुसलमान हो गया था। सूद बिरादरी का लुधियाना में प्रतिष्ठित स्थान है। यह विधर्मियों की शुद्धि की प्रबल विरोधी थी। पर आर्यसमाज ने उसके विरोध की कोई परवाह नहीं की, और शुद्धि के कार्य को जारी रखा। हिन्दुओं में रहतिया आदि जातियों को अछूत समझा जाता था। शुद्धि द्वारा उनकी अस्पृश्यता को दूर करने के लिए भी लुधियाना के आर्यसमाज ने बहुत प्रयत्न किया। उनके बालकों की शिक्षा की व्यवस्था भी समाज द्वारा की गयी। सन् १९२३ में बांगरू जाति के ६३ व्यक्तियों की शुद्धि लुधियाना के समाज मन्दिर में की गयी थी, और उनके राज्यों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला भी उनके मुहल्ले में खोल दी गयी थी। विद्या सागर और विद्यारत्न नाम के दो बांगरू बालक समाज द्वारा दिल्ली की आर्य पाठशाला में संस्कृत पढ़ने के लिए भेजे गये, और बाद में उन्हें मोगा कालेज में प्रविष्ट करवाया गया। बांगरू जाति के अन्य भी अनेक बच्चों को स्थानीय आर्य हाई स्कूल और आर्य कन्या पाठशाला में शिक्षा दिलायी गयी। अछूत जातियों के कुछ परिवार लुधियाना में रामबाग के पास बसे हुए थे। लुधियाना समाज ने उन्हें शुद्ध करके समाज में प्रविष्ट किया, और उनके बच्चों की शिक्षा के लिए पाठशाला स्थापित थी। इन्होंने अपने घरों में वैदिक विधि से संस्कार कराने प्रारम्भ किये, और अनेक बार अपने स्थान पर प्रीतिभोजों की व्यवस्था की, जिनमें आर्य स्त्री-पुरुष प्रीतिपूर्वक सम्मिलित हुए। इन्होंने अपनी बस्ती का नाम 'दयानन्दगढ़' रख लिया, जो महर्षि के प्रति इनकी श्रद्धा को सूचित करने के लिए पर्याप्त है। श्री अमीरचन्द वानप्रस्थी ने इन लोगों में जिस उत्साह व लगन से वैदिक धर्म का प्रचार किया, उसकी जितनी सराहना की जाए कम है।

आर्यसमाज के सब प्रकार के कार्यकलाप में लुधियाना का आर्यसमाज यथाशक्ति आर्थिक सहायता प्रदान करता रहा है। जब लाहौर में डी.ए.वी. कालेज की स्थापना हुई, तो इस समाज द्वारा उनके फण्ड में सात हजार रुपये भेजे गये (सन् १८८८)। बाद में गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना होने पर उसके लिए धन एकत्र करने में इस समाज ने अनुपमतत्परता प्रदर्शित की। जिन लाला लब्भूराम नैयड ने डेढ़ लाख के लगभग रुपये एकत्र कर गुरुकुल को प्रदान किये थे, वह लुधियाना आर्यसमाज के ही सदस्य थे। कन्या महाविद्यालय जालन्धर, आर्य अनाथालय फिरोजपुर, दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर आदि सभी आर्य संस्थाओं को इस समाज द्वारा उदारतापूर्वक सहायता दी जाती रही है।

आर्यसमाज लुधियाना ने दो शिक्षण-संस्थाओं का संचालन भी अपने हाथों में ले लिया था-आर्य हाई स्कूल और गणेशीलाल आर्य कन्या पाठशाला। लुधियाना शहर में मुंशी जमनाप्रसाद कायस्थ ने बालकों की शिक्षा के लिए एक हिन्दू स्कूल की स्थापना की थी। शुरू में तो यह स्कूल अच्छी तरह चला, पर बाद में इसकी दशा बिगड़ने लगी और इसके संचालन में कठिनाई आने लगी। इस अवस्था में मई, १८८१ में आर्यसमाज ने हिन्दू स्कूल को अपने हाथों में ले लिया, और उसके प्रबन्ध के लिए एक उपसभा का निर्माण कर दिया, जिसके प्रधान लाला रामजीदास और मन्त्री मुन्शी माघोस्वरूप थे। उस समय स्कूल में विद्यार्थी केवल तीस थे, और अध्यापक केवल चार। आर्यसमाज द्वारा स्कूल का प्रबन्ध हाथ में ले

(शेष पृष्ठ 6 पर)

ज्योतिष की वेदांगता

ले.-वीरेन्द्र कुमार अलंकार अध्यक्ष, संस्कृत विभाग पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

वेदांगता-

ज्योतिष शास्त्र की गणना वेदाङ्गों में करते हुए पाणिनी ने इसे वेदपुरुष का चक्षु कहा है-ज्योतिषामयनं चक्षु: किन्तु यह वैसा अङ्ग नहीं है, जैसे शरीर का अङ्ग, क्योंकि शरीर तो अङ्गरूप ही होता है। हाथ, पैर, उदर, सिर आदि अङ्गों को अलग कर देने पर शरीर ही समाप्त हो जाएगा और शरीर की स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहेगी। जबकि शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष अङ्गों की पृथक् सत्ता है और वेदपुरुष की पृथक्। इसलिए यहाँ अङ्ग का अर्थ उपकारक है। षड् वेदांग को वेदार्थावगम और वेदाध्ययन में परम उपकारक होने से अङ्गवत् मुख्य माना गया है।

स्वरवर्णादि के सम्यक् अध्ययन के बिना मन्त्रोच्चारण सम्भव नहीं है और यह उच्चारण प्रकार ही शिक्षा है- **तस्मात् स्वरवर्णाद्यपराधपरिहाराय शिक्षाग्रन्थोऽपेक्षित:** और कल्प वेदांग वैदिक कर्मों को व्यवस्थित करने वाला कल्पना शास्त्र है-**कल्पे वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्।** इसी प्रकार व्याकरण शास्त्र में शब्दव्युत्पत्ति विज्ञान तथा निरुक्त में निर्वचनविज्ञान है और वेदमन्त्रों के शुद्धपाठ व अर्थज्ञान के लिए छन्द:शास्त्र की अनिवार्यता है। इस प्रकार ये पाँचों वेदांग वेदार्थावगम में साक्षात् उपकारक हैं। ज्योतिष भी एक वेदांग है। अत: वेदार्थ में इसकी क्या उपयोगिता है, यह विचारणीय प्रश्न है।

वेद में अनन्त विद्याएँ अथवा उन विद्याओं का मूल विद्यमान है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इन सब विद्याओं का अन्तर्भाव चार शीर्षकों में कर दिया है-**अत्र चत्वारो वेदविषया: सन्ति विज्ञानकर्मोपासनाज्ञानकाण्डभेदात्'** अर्थात् वेद में चार विषय हैं-विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान। इनमें दूसरा विषय कमर्काण्ड है। इसके दो मुख्य भेद हैं-एक परमेश्वर प्राप्ति के लिए, जिसमें परमेश्वर की प्राप्ति ही उद्देश्य है, वह निष्काम कर्म और दूसरा लौकिक सुख के लिए किया जाने वाला सकाम कर्म है। इसमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त यज्ञ भी कर्मकाण्ड के ही अन्तर्गत है -**तत्र द्वितीयो विषय: कर्मकाण्डाख्य:, स सर्व: क्रियामयोऽस्ति... स चाने-कविधोऽस्ति। परंतु तस्यापि खलु द्वौ भेदौ मुख्यौ स्त:-एक: परमपुरुषार्थसिद्धयर्थ:... अपरो लोकव्यवहारसिद्धये।** इस प्रकार यज्ञ भी वेद का प्रमुख विषय है। इस यज्ञ विज्ञान की सम्पूर्ण व्याख्या कल्प और ज्योतिष के बिना सम्भव नहीं है। ज्योतिष का ज्ञान वैदिक संस्कारों में काल तथा ग्रहनामादि के परिज्ञान के लिए पर्याप्त उपादेय है। लोक में ज्योतिष पर्याप्त विवाद का विषय रहा है। इसका कारण अनधीत ज्योतिर्विद् हैं। इसलिए यह विचारणीय है कि आचार्य लगध प्रणीत **वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ** के अध्येता और अधीती कितने हैं या **सूर्य सिद्धान्त** जैसे ग्रन्थों के रहस्य को समझने वाले विद्वान कितने हैं। वैदिक युग से लेकर अद्यावधि काल तक आचार्य परम्परा ज्योतिष की वेदांगता स्वीकार करती है। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि ज्योतिष की पारंगता अनेक वेदविषयों की स्पष्टता में सहायक या उपकारक है। आज वेद में विज्ञान विषय की खोज हो रही है। इसमें काल और दिक् भौतिक विज्ञान के प्रिय विषय हैं। स्मरणीय है कि अथर्ववेद में भी काल सम्बन्धी कुछ मन्त्र हैं। इस काल विज्ञान की व्याख्या में ज्योतिष का ज्ञान परम सहायक है। काल के दो रूप स्वीकार किए गए हैं-एक अखण्ड काल जो सैद्धान्तिक पक्ष है और दूसरा सखण्ड काल, जो व्यावहारिक पक्ष है। इस व्यावहारिक काल का विवेचन ज्योतिष ही करता है।

ज्योतिष शब्द का मूल ज्योति: है और इसका मूल अर्थ यहाँ नक्षत्र है। इसलिए नक्षत्र विज्ञान अथवा आधुनिक सन्दर्भ में कहें तो खगोल विज्ञान का पुरातन नाम ही ज्योतिष है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भौतिक विज्ञान का मूल भी वेद को ही माना है। उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में पृथिव्यादिलोक भ्रमण के विषय में यह प्रमाण देखिये-**आयं गौ: पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुर:। पितरं च प्रयन्त्स्व: (यजुर्वेद-3.6)। भाष्यम्-अस्याभिप्राय:- आयं गौरित्यादिमन्त्रेषु पृथिव्यादयो हि सर्वे लोका भ्रमन्त्येवेति विज्ञेयम्। (आयं गौ:) अयं गौ: पृथिवीगोल: सूर्यश्चन्द्रोऽन्यो लोको वा, पृश्निमन्तरिक्षमक्रमीदाक्रमणं कुर्वन् सन् गच्छतीति तथान्योऽपि। तत्र पृथिवी मातरं समुद्रजलमसदत् समुद्रजलं प्राप्ता सती तथा (स्व:) सूर्य पितरमग्निमयं च पुर: पूर्व पूर्व प्रयन्सन् सूर्यस्य परितो याति। एवमेव सूर्यो वायुं पितरमाकाशं मातरं च, तथा चन्द्रोऽग्निं पितरमपो मातरं प्रति चेति।** इसका तात्पर्य यह है कि पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि लोक सब अपनी-अपनी परिधि में, अन्तरिक्ष के मध्य में सदा घूमते रहते हैं और यह पृथ्वी अपने पिता सूर्य के चारों ओर घूमती है। इस प्रकार वेद में सौर मण्डल का बीज रूप में निर्देश है। इस मन्त्र का विशद व्याख्यान चाहिए तो ज्योतिष शास्त्र इसमें परम सहायक है। क्योंकि ग्रहों की गति का प्रथम अध्ययन इस विश्व को ज्योतिष शास्त्र ने ही दिया है। घटी, कला, पल, विपल की गम्भीर मीमांसा ज्योतिष शास्त्र में हुई है।

यह सन्दर्भ भी देखिए-त्वं सोम पितृभि: संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ। तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् (ऋग्वेद-8.48.13)।... अस्याभिप्राय:-अस्मिन् मन्त्रे चन्द्रलोक: पृथिवीमनुभ्रमतीत्ययं विशेषोऽस्ति। अयं सोमश्चन्द्र-लोक: पितृभि: पितृवत्पालकैर्गुणै: सह संविदान: सम्यक् ज्ञात: सन् भूमिमनुभ्रमति। कदाचित् सूर्यपृथिव्योर्मध्येऽपि भ्रमन्सत्रा-गच्छतीत्यर्थ:।... द्यौ: सूर्य: पृथ्वी च भ्रमतश्चलत इत्यर्थ:। अर्थात् स्वस्यां स्वस्यां कक्षायां सर्वे लोका भ्रमन्तीति सिद्धम्। यहाँ यह कहा गया है कि चन्द्रलोक पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। कभी-कभी सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाता है। मन्त्र में द्यौ का अर्थात् प्रकाश करने वाले सूर्य आदि लोक तथा प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक अपनी-अपनी कक्षा में सदा घूमते रहते हैं।

यहाँ ग्रहों की गति के कारण ग्रहण का संकेत भी हो गया है। इसी वैदिक संकेत के आधार पर सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण का प्रथम ज्ञान देने वाला वेदांग यह ज्योतिष ही है। इसलिए वेद में आए ग्रहों के अध्ययन में उपकारक होने से ज्योतिष शास्त्र वेदांग है।

वेद की यह शैली है कि इसमें विषय या विद्याएँ बीज रूप में हैं और अन्य शास्त्रों में उनका विकास वा व्याख्यान है। ब्राह्मणों की निर्मिति का कारण वैदिक आख्यान, यज्ञ आदि की मीमांसा करना है। वेद के दार्शनिक सिद्धान्तों का व्याख्यान दर्शन ग्रन्थ में है, धर्म शास्त्रीय सिद्धान्तों का विस्तार स्मृत्यादि ग्रन्थों व धर्म सूत्रों में हुआ है। आथर्वण वनस्पतियों के विज्ञान को आयुर्वेद शास्त्र का अध्येता ठीक-ठीक समझ सकता है और वेदविहित काल विज्ञान व ग्रहगतिविज्ञान का विस्तार ज्योतिष शास्त्र में है। इसलिए यह भी स्थापित सिद्धान्त है कि केवल वेद ही स्वत: प्रमाण है और वेदानुकूल होने से ही अन्य शास्त्रों की प्रामाणिकता मान्य है। अब वेद में स्त्री का क्या स्थान है, इसके लिए कोई स्वतन्त्र सूक्त वेद में कदाचित न मिले, किन्तु वेद में नारी को सम्राज्ञी कहा गया है। इस सम्राज्ञी शब्द का अर्थ विस्तार ही मनुस्मृति में यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: तथा तस्या त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते के रूप में हुआ है। इसलिए स्मृतियों में जहाँ नारी का गौरव और उत्कर्ष है, वह वेदानुकूल होने से प्रमाण है और यदि स्मृति में कहीं पर नारी को अधम या निकृष्ट कहा गया है तो वह वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण है। ज्योतिष शास्त्र की प्रमाणता और अप्रमाणता का विचार भी इसी दृष्टि से करना चाहिए।

ज्योतिष की वेदांगता काल विधान की दृष्टि से तो है ही। साथ ही वेदों में ग्रहों के आकर्षण-अनुकर्षण सम्बन्धी प्रसंग भी है। यह मन्त्र द्रष्टव्य है-यदा ते हर्य्यता हरी वावृधाते दिवे दिवे। आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे (ऋग्वेद-7.12.27), ऋषि दयानन्द इसका यह अभिप्राय प्रकट करते हैं-सूर्येण सह सर्वेषां लोकानामाकर्षणमस्तीश्वरेण सह सूर्यादिलोकानां चेति।''

(क्रमश:)

"मरणासन्न जीव की स्थिति"

ले.-डा. सत्यदेव 507-गोदावरी ब्लाक, अशोका सिटी कृष्णा नगर-मथुरा

यह हम सभी जानते हैं कि ईश्वर द्वारा रची गई जड़, चेतन, स्थावर तथा जंगम सभी प्रकार की रचनाओं में सृष्टि के अन्तर्गत मानव शरीर की रचना परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट कृति है। एक मात्र मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो कर्म करने में स्वतन्त्र है, किन्तु किये गये कर्म का फल/परिणाम भोगने में परतन्त्र है, पराधीन है। ईश्वर की व्यवस्थानुसार प्रत्येक प्राणी को अपने किये गये कर्म का फल भोगना ही होता है।

वेदों की रचना कोई सामान्य रचना नहीं है, 'वेद' साक्षात् ईश्वर की वाणी हैं अर्थात् इस जगतीभर के सफल संचालन हेतु 'वेद' ईश्वर द्वारा प्रदत्त संविधान है, वेदों के ज्ञान व शिक्षा के आधार पर चलने वाला प्रत्येक मनुष्य वर्तमान, जीवन के साथ-साथ अपने अध्यात्म के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है और मोक्षानन्द प्राप्त कर सकता है। नमूने के तौर पर वेद मन्त्रों के कतिपय अंश यहाँ प्रस्तुत हैं :-

1. 'अक्षैर्मा दीव्यः।-(ऋ. १०/३४/१३) अर्थात्-जुआ मत खेलो।

2. 'ऋतस्य पथा' प्रेत-(यजु. ७/४५) अर्थात्-सत्य के मार्ग पर चलो।

3. "ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतँस्मर।।"-(यजु. ४०/१५) अर्थात्-हे कर्मशील मनुष्य! अपने सामर्थ्य को स्मरण कर, अपने कृत-कर्मों को स्मरण कर एवं दूसरों के उपकार को स्मरण करो।

4. 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।'-(यजु. ४०/१) अर्थात्-पराये धन का लालच मत करो।

5. 'मा हिंसीः पुरुषान् पशूंश्च' (अथर्व. ३/२८/६) अर्थात्-मनुष्य व पशुओं को (मन, वाणी एवं कर्म से) कष्ट न दो।

देव-दुर्लभ मनुष्य शरीर का प्रयोजन दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति, जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाना और परमानन्द की प्राप्ति करना है। इसी रहस्य को केनोपनिषद (२/५) में इस प्रकार कहा गया है-'**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।**'-इस मानव शरीर में रहते हुये हमें यदि परम तत्व (परमात्मा) का बोध हो गया तो मानो मानव-शरीर सार्थक हो गया, अन्यथा तो महान् विनाश हो गया जानो।

अब आइये अपने मूल शीर्षक पर विचार करते हुऐ मृत्यु के समय जीव (मनुष्य) की क्या स्थिति होती है? के बारे में विचार करते हैं। सांख्य-दर्शन के अनुसार स्थूल भूतों से स्थूल शरीर और स्थूल भूतों के कारण रूप सूक्ष्मभूतों से सूक्ष्म शरीर की रचना होती है, और इसी शरीर के आधार पर जीवात्मा = जीव विविध योनियों में संसरण किया करता है, इसके लिये सूत्रकार ने सांख्य दर्शन के तृतीय-अध्याय में सूत्र संख्या-३ का प्रतिपादन इस प्रकार किया है-

'तद्बीजात् संसृतिः-सां. द.-३/३, अर्थात् एक जीवात्मा का दूसरी देह में प्रवेश, स्थूलभूतों के बीज अर्थात् उपादान कारण रूप सूक्ष्मभूतों से घटित सूक्ष्म शरीर से होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जब आत्मा एक स्थूल शरीर को छोड़कर दूसरे स्थूल शरीर में जाता है, उस समय छोड़ा हुआ स्थूलशरीर तो यहीं रह जाता है, परन्तु सूक्ष्म-शरीर आत्मा को आवेष्टित किये हुये बराबर उसके साथ बना रहता है। दर्शन की भाषा में इसे 'आतिवाहिक शरीर' भी कहते हैं क्योंकि देहान्तर को (दूसरे शरीर को) ले जाने के लिये यह सूक्ष्म शरीर अतिवाहिक = सवारी का काम करता है। सत्तरह तत्वों का समुदाय ही 'सूक्ष्मशरीर' कहलाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नवम समुल्लास के अनुसार ये सत्रह तत्व हैं-पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्मभूत, मन तथा बुद्धि।

जब जीव आतिवाहिक शरीर = सूक्ष्मशरीर से युक्त होता है, तब वह सूक्ष्मशरीर जीव के एक शरीर से दूसरे शरीर को जाते समय बीज तत्वों के रूप में साथ जाता है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार मृत्यु के समय भौतिक-देह तो यहीं रह जाता है, जिसका अन्त्येष्टि-संस्कार कर दिया जाता है, किन्तु सूक्ष्मशरीर के सब तत्व जीवात्मा सहित 'ब्रह्म' के अधीन हो जाते हैं, उस समय जीवात्मा = जीव सुषुप्ति की अवस्था में रहता है और वह स्वतन्त्ररूप से गमन = विचरण नहीं करता, अपितु परमात्मा की व्यवस्थानुसार कर्मफल का भोग करने के लिये नये शरीर = नव देह में गमन = प्रवेश करता है :-

'तानि परे तथा ह्याह।'-(वेदान्त-४/२/१५)

तत्पश्चात् बताया कि देहान्तर में जीवात्मा के प्रवेश के समय, उसकी इन्द्रियाँ मन में और मन प्राण में लीन रहता है, किन्तु उन्हें पृथक् भाव नहीं रहता और ना ही उनका नाश होता हैं तत्वरूप में वे सूक्ष्मशरीर में बने रहते हैं :-'**अविभागो वचनात्**'।-वेदान्त ४/२/१६) इसके बाद जीवात्मा = जीव सूर्य की रश्मियों के माध्यम से आकाश में गमन करता है-'रश्म्नुसारी'।

(वेदान्त ४/२/१८)

जिस समय जीवात्मा शरीर से निकलकर आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र और विद्युत आदि तत्वों में प्रवेश करता, तब इन तत्वों के द्वारा जीवात्मा को कर्मफल का भोग नहीं मिलता, अपितु नये शरीर को पाने की प्रतीक्षा में रहता है और वह सुषुप्ति की दशा में होता है, क्योंकि सूर्य-चन्द्र आदि ये सब जीवात्मा को आगे पहुँचाने के साधन मात्र है, इसीलिए इन्हें अतिवाहिक = सवारी के रूप में माना गया है। ऐसी अवस्था में जीवात्मा गमनागमन करते हुए यानी जीव के एक देह से दूसरे देह को धारण करते समय सूक्ष्मशरीर बीजतत्वों के रूप में साथ-साथ जाता है।

इस सन्दर्भ में यजुर्वेद के ३५वें अध्याय के दूसरे-तीसरे मन्त्र का उल्लेख करना अधिक समीचीन होगा, वे दो मन्त्र हैं-

"सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँल्लोकमिच्छतु। तस्मै युज्यन्तामुस्त्रियाः।।'-

(यजु. ३५/२)

"वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्यवर्चसा। विमुच्यन्तामुस्त्रियाः।।

(यजु. ३५/३)

अर्थात्

परमपिता परमात्मा उस जीवात्मा को सूर्य की किरणों के माध्यम से तब तक गमन = विचरण कराता है, जब तक कि अगला-जन्म प्राप्त न हो जाये। दूसरे मन्त्र का भावार्थ करते हुये महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि "जब जीव शरीरों को छोड़कर विद्युत, सूर्य के प्रकाश और वायु आदि होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं, तब किरण छोड़ देती है।"

अतः जीवात्मा गमनागमन की समस्त व्यवस्था परमात्मा के अधीन होती है क्योंकि वही सम्पूर्ण जगत् का कर्त्ता, धर्त्ता और संहरता है।

पृष्ठ 4 का शेष-लुधियाना आर्यसमाज (इतिहास के पन्नों से)

लेने पर उसकी अवस्था सँभलने लगी, और उनके विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गयी। सन् १९३१ में इस स्कूल में १४५० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, जिनमें तीन सौ के लगभग सिख और मुसलमान थे। अध्यापकों की संख्या भी तब चार से बढ़कर चालीस तक पहुँच गयी थी। स्कूल के साथ एक छात्रावास भी था, जिनमें २५० विद्यार्थी निवास करते थे। आर्य स्कूल लुधियाना ने जो उन्नति की, उसका प्रधानश्रेय मास्टर रामलाल को प्राप्त है, जिन्होंने कि सन् १९०५ में मुख्याध्यापक के रूप में उसका संचालन शुरू किया था। गणेशीलाल आर्य कन्या पाठशाला की स्थापना अगस्त, १९०३ में लाला गणेशीलाल जी के दान द्वारा हुई थी। लाला जी के स्वर्गवास के पश्चात् उनकी पत्नी श्रीमती जानकी देवी ने अपनी सब सम्पत्ति स्त्री शिक्षा के लिए लुधियाना आर्यसमाज को प्रदान कर दी। पति-पत्नी के इस सात्त्विक दान से इस पाठशाला का कार्य प्रारम्भ हुआ। उसके विकास व उन्नति के लिए पण्डित लक्ष्मणदास ने जो प्रयत्न किया वह वस्तुतः सराहनीय है। इसके लिए उन्होंने सरकारी सर्विस से त्यागपत्र दे दिया, और २७ वर्ष तक मुख्याध्यापक रहकर पाठशाला का संचालन किया। पाठशाला के साथ 'कन्या आश्रम' नाम से एक छात्रावास भी था, जिसमें छात्राओं के निवास, भोजन आदि की समुचित व्यवस्था थी। सन् १९११ में इस पाठशाला में ४२० बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी। आर्य हाई स्कूल का कन्या पाठशाला-दोनों में पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की शिक्षा समिति द्वारा निर्धारित पुस्तकों के आधार पर धर्म की शिक्षा भी दी जाती थी और मिडल कक्षाओं की कन्याओं के लिए संस्कृत पढ़ना अनिवार्य रखा गया था।

लुधियाना शहर का आर्यसमाज इतना सक्रिय था कि उसे केन्द्र बनाकर जिले की विविध बस्तियों व नगरों में अनेक समाज स्थापित हो गये थे जिनकी संख्या सन् १९३१ में दस थी।

संकलनः श्री विजय सरीन

साभारः आर्य समाज का इतिहास

पृष्ठ 2 का शेष-जाति-आयु-भोग

कुछ लोग आयु को श्वासों पर आधारित मानते हैं। चाहे आप श्वासों पर माने या अन्य किसी पर-आयु-भोग भी जाति के समान निश्चित है। प्राणायाम, व्यायाम, ब्रह्मचर्यादि के पालन से आयु की वृद्धि इस जन्म में नहीं-आगामी जन्म में उत्तम आयु प्राप्त हो सकती है। इस जन्म में उक्त साधनों से प्राप्त जीवनकाल स्वस्थ और सुखमय हो सकता है, यदि नहीं रहता है तो पूर्व जन्म-जन्मान्तरों के अपुण्य कर्म ही, दु:खरूपी फल देने वाले हैं-ऐसा ही समझना उचित है।

एतद् विषयक अन्य कोई प्रमाण हो तो बतायें।

बाल्मीकि रामायण में श्रीराम के उद्गार इस प्रकार हैं-

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यस्कृत् कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको दुखेन दुखं यदहं विशामि।।
राज्यप्रणाश: स्वजनवियोग: पितुर्विनाशो जननीवियोग:।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोक-वेगमापूरयन्ति प्रविचिन्तितानि।।
(वा. रामायाण 3.63-4,5)

पूर्व में (पूर्व जन्मों में) कई पाप किये हैं, जिनका यह फल मुझे मिल रहा है कि एक के बाद दूसरा दु:ख प्राप्त हो रहा है। राज्य का नाश, स्वजनों का वियोग, पिता की मृत्यु, माता से वियोग-इन सबका चिन्तन करते हुए मेरे शोक का वेग बढ़ता जा रहा है।

यह ठीक है-क्या स्वामी दयानन्द का सुख दु:ख की प्राप्ति कर्मानुसार होती है। इस विषय में स्पष्ट प्रमाण है? जी हाँ है, उनके ग्रन्थों तथा वेद भाष्य में अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। जिज्ञासु वहां देख सकते हैं। लेख के कलेवर को विस्तार न देकर एक ही स्पष्ट प्रमाण इस प्रकार है-

''वैसे ही जगत् में विचित्र सुख दु:ख आदि की घटती-बढ़ती देख के पूर्व जन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते? और जो पूर्व जन्म को न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है। क्योंकि बिना पाप के दारिद्रयादि दु:ख और बिना पूर्व सञ्चित पुण्य के राज्य, धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उसको क्यों दी?

इसके अतिरिक्त विचारणीय यह भी है कि दर्शनशास्त्र के अनुसार-कारण बिना कोई कार्य नहीं होता है। इस आधार पर सूत्रगत-'सतिमूले= पूर्व जन्मों के कर्मानुसार फल रूप में प्राप्त जाति-आयु-भोग जो ईश्वरीय नियम से प्राप्त है-उसमें परिवर्तन कैसे सम्भव है?

आपने जो कहा-'आयु भोग' में परिवर्तन सम्भव नहीं है, कोई अन्य प्रमाण भी है?

हाँ है-लेख की सीमा में संक्षेप से ही वर्णन करेंगे। आप अन्यथा न लें। ईश्वरीय ज्ञान के विषय में स्वामी दयानन्द ने एक कसौटी प्रत्यक्षादि प्रमाण की दी है। इस विषय में सन्त कबीर का वचन है-

'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखन देखी'

इस वचन के अनुसार ग्रन्थों में लिखा तो बहुत है-किन्तु प्रत्यक्ष में क्या दिख रहा है, यह भी विचार करें।

लेखक जब गुरुकुल वृन्दावन, मथुरा में शिक्षा ग्रहण कर रहा था-तब अनेक ब्रह्मचारी थे। उनमें एक ब्रह्मचारी प्रतिदिन व्यायाम, सन्ध्यादि करने वाला, अत्यन्त सरल, सौम्य, विनम्र, पढ़ने में होशियार, तात्पर्य यह कि हम सब ब्रह्मचारियों में सर्वश्रेष्ठ एक दिन के साधारण ज्वर में मृत्यु को प्राप्त हुआ। जबकि सात दिन, इक्कीस दिन ज्वर में पड़े रहने वाले को मृत्यु ने अपना ग्रास न बनाया। गुरुकुल वासी सभी इस वज्रपात से अत्यन्त दु:खी थे।

इस घटना से लेखक के मस्तिष्क में यह विचार स्थिर हो गया कि जन्म-मृत्यु का चक्र कर्मों के आधार पर विश्व विधाता के नियन्त्रण में है।

अभी पांच वर्ष हुए ऐसी ही घटना की पुनरावृत्ति सैण्ट पैट्रिक्स विद्यालय में पढ़ने वाले कक्षा 12 के छात्र के साथ हुई। जिसमें उस विद्यालय के प्राचार्य सहित सभी अध्यापक अत्यन्त विह्वल थे।

वैसे भी जाति, आयु, भोग विपाक = फल के रूप में प्राप्त हैं। क्या फल में परिवर्तन घटा-बढ़ी अल्पज्ञ मानव द्वारा संभव है? निश्चय से विपाक = कर्मफल प्राप्ति परमात्मा के ऋत नियम के अन्तर्गत है। कारण-कार्य के नियमानुसार है।

यह तो हो सकता है पर्वत के समान दु:खदायी कर्मफल वर्तमान में किये जाते त्याग-तपस्यादि सत्कर्म द्वारा राई तुल्य बना लें। उपेक्षा कर लें। किन्तु कर्मफल प्राप्ति में परिवर्तन संभव नहीं।

इस प्रकार सहृदयी पाठकगण स्वयं अपने चारों ओर के दृश्यों, घटनाओं को देखकर प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। आयु, भोग भी कर्म फल के अन्तर्गत होने से घटाये बढ़ाये नहीं जा सकते हैं।

अन्त में अथर्ववेद जो कि स्वत: प्रमाण के अन्तर्गत आता है, के 13-3-38 के अनुसार भी कर्मफल के विषय में यह ज्ञातव्य है। मन्त्र विपाक = कर्मफल विषय में यह स्पष्ट कह रहा है।

न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रै: सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतद् पक्तारं पक्वं पुनराविशाति।।

न किल्विषमत्र = इसमें, विपाक = कर्मफल के विषय में कभी कोई त्रुटि, कमी-घटा-बढ़ी नहीं होती है। नाधारो अस्ति = कर्मफल घटाने-बढ़ाने में कोई आधार-सहयोगी नहीं होता है।

न यन्मित्रै: सममान एति = न मित्र, बन्धु-बान्धवों की सहायता से इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। न: एतत् पात्रं अनूनं निहितम् = यह विपाक = कर्मफल बिना घटा-बढ़ी के सुरक्षित रहता है। पक्तारं पक्व: पुनराविशति = पकाने वाले = कर्मकर्त्ता को पकाया हुआ कर्मफल फिर आ मिलता है अर्थात् 'कर्मफल ईश्वर द्वारा प्रदत्त ऋत अर्थात् अपरिवर्तनीय नियम के अन्तर्गत है। इसमें परिवर्तन सम्भव नहीं है।

पृष्ठ 1 का शेष-भोग-सामग्री के साथ जीव का...

विषयवासना अत्यन्त प्रबल होती है, यह आत्मा पर मानो पर्दा डाल देती है, आत्मा को कुछ सुझाई नहीं देता है। विषयवासना के कारण प्रकृति से सङ्ग बढ़ता है और मनुष्य भगवान् से दूर होता जाता है। जितना प्रकृति से सङ्ग बढ़ता है, उतना इसमें ज्ञानप्रकाश क्षीण होने लगता है। किसी विरले के भाग्य जागते हैं और वह कुछ-कुछ उस सर्वथा सर्वदा सर्व से स्तोतव्य भगवान् का ध्यान, सङ्ग करता है, उसका प्यार पाने लगता है, तब उसकी मति सुधरती है। बुद्धि विषयवासना से पराङ्मुख होने लगती है, तब उसकी चेष्टाएँ विवेकपूर्ण होने लगती हैं। मनुष्य जीवन-यात्रा-निर्वाह के लिए, अपेक्षित भोगसामग्री की प्राप्ति के लिए ही पाप में प्रवृत्त होता है, यदि यह दृढ़निश्चय हो जाए कि भोग अवश्य प्राप्त होगा, तो मनुष्य पाप से हट जाएगा।

इस निश्चय का साधन सर्वव्यापक सर्वज्ञ भगवान् को कर्मफल-प्रदाता जानने-मानने से हो सकता है। भगवान् को इस रूप में मानने से मनुष्य छिपकर कर्म करने की चेष्टा नहीं कर सकता, उसे भगवान् के सर्वत्र विद्यमान होने का ज्ञान है। ज्ञानवान् यदि सर्वत्र विद्यमान है तो उसका ज्ञान भी सर्वत्र, अर्थात् सर्व पदार्थों के विषय में अवश्य होता है, अर्थात् किस कर्म का परिणाम=फल क्या हो, इसका उसे पूरा ज्ञान है। इसके कर्मफल-ज्ञान की सफलता कर्मफल-प्रदान में है, अर्थात् भगवान् सर्वव्यापक, सर्वज्ञ होता हुआ याथातथ्यरूप से कर्मफल विधान करता है। इस निश्चय के दृढ़, अविचल होते ही मनुष्य की पापवासनाएँ जल जाती हैं, किन्तु मनुष्य का नैसर्गिक अज्ञान उसे पुन: पाप-गर्त में गिराने की सामग्री प्रस्तुत कर देता है। इससे बचने का उपाय सर्वज्ञाननिधान भगवान् का ध्यान है। जैसा कि मनुजी ने कहा है

ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आह्वान पर 3 मई 2021 को अन्तर्राष्ट्रीय यज्ञ दिवस के अवसर पर हर घर यज्ञ, घर घर यज्ञ योजना के अन्तर्गत वैश्विक महामारी कोरोना से मुक्ति की कामना करते हुए रोग निवारण यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री सतीश अरोड़ा जी नंगलटाउनशिप अपने परिवार के साथ अपने निवास स्थान पर, श्री श्याम लाल आर्य, आर्य समाज बंगा के सदस्यों के साथ, श्री शशि कोमल जी आर्य समाज बाजार श्रद्धानंद अमृतसर में आर्य समाज के सदस्यों के साथ, श्री प्रह्लाद कुमार जी, श्री विकास आर्य जी, श्री वासदेव जी धूरी अन्य सदस्यों के साथ, श्री सतीश शर्मा जी अपने निवास स्थान पर अपने परिवार के साथ, डा. देव राज जी प्रधान आर्य समाज कोटकपूरा अपने निवास स्थान पर अपने परिवार के साथ, आर्य समाज मालेरकोटला की मंत्राणी श्रीमती सुनीता आर्य जी एवं श्रीमती सुजाता जी अपने निवास स्थान पर, श्रीमती अनु गुप्ता जी आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना अपने निवास स्थान पर एवं आर्य समाज सरहिन्द के सदस्य श्री लव सूद जी अपने निवास स्थान पर अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुए।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**